राजकोषीय नीति और आर्थिक सुधार *

वाइ. वी. रेड्डी

मैं अपने मित्र प्रो. गोविंद राव द्वारा मुझे राष्ट्रीय सरकारी वित्त और नीति संस्थान (एनआइपीएफपी) में आमंत्रित करने पर गौरवान्वित महसूस कर रहा हूँ। मुझे एनआइपीएफसी में काम करने के अनेक सुअवसर मिले हैं। एनआइपीएफपी के साथ मेरे निजी लगाव के अलावा भारतीय रिज़र्व बैंक और एनआइपीएफपी के बीच संस्थागत रूप से भी घनिष्ठ संबंध हैं। उदाहरण के लिए, प्रो. गोविंद राव रिज़र्व बैंक के दक्षिणी स्थानीय बोर्ड के सदस्य हैं।

शुरू में मैंने सोचा था कि मैं केंद्रीय बैंकर के दृष्टिकोण से राजकोषीय नीति और आर्थिक सुधारों पर बोलूंगा। किंतु बाद में मेरे ध्यान में यह बात आयी कि यद्यपि मैं पिछले एक दशक से केंद्रीय बैंकर के रूप में कार्यरत हूँ, किंतु उससे पहले के तीन दशकों की अधिकांश अवधि में मैं भारत सरकार के वित्त मंत्रालय में तथा आंध्र प्रदेश सरकार में कार्य कर चुका हूं। अतः मेरे लिए यह कठिन विकल्प था कि मैं मौद्रिक नीति की राजकोषीय समीक्षा प्रस्तुत करूं या राजकोषीय नीति की मौद्रिक समीक्षा प्रस्तुत करूं। मैं कुछ समय के लिए विश्व बैंक में कार्य कर चुका हूं जो वैश्विक सरकारों का विचार देता है और आइएमएफ में भी कार्य कर चुका हूं जो वैश्विक मौद्रिक प्राधिकारी की दृष्टि देता है। मैंने एक मध्यमार्ग के रूप में राजकोषीय नीति और आर्थिक सुधारों पर पेशेवराना दृष्टिकोण प्रस्तुत करने का मार्ग चुना है।

भारत की राजकोषीय स्थिति : संक्षिप्त प्रस्तावना

सामान्य तौर पर, स्वतंत्रता के पहले 30 वर्षों के दौरान अर्थात् 1950 और 1980 के बीच केंद्र और राज्य सरकारों के राजकोषीय घाटे बहुत अधिक नहीं

* डॉ.वाइ.वी.रेड्डी, गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा राष्ट्रीय सरकारी वित्त और नीति संस्थान (एनआइपीएफपी) में 26 मई 2008 को दिया गया भाषण (संपादित प्रतिलेखन)।

यह भाषण श्री एस.एल.एन. सिम्हा को समर्पित है जिनके अनुरोध पर प्रकाशन के लिए यह प्रतिलेखन संपादित किया गया। श्री सिम्हा वास्तव में भारतीय रिज़र्व बैंक का इतिहास (1935-1951) के एक खंड के लेखक हैं और अत्यधिक आदरणीय केंद्रीय बैंकर हैं जो नब्बे वर्ष की आयु में भी केंद्रीय बैंकिंग के सिद्धांत और व्यवहार में सक्रिय रुचि लेते हैं। रिज़र्व बैंक भारत में एक सम्मानित सरकारी संस्था की अपनी विद्यमान हैसियत के लिए श्री सिम्हा जैसे प्रतिष्ठित कर्मचारियों का ऋणी है।

थे। यह सामान्यतः राजस्व अधिशेष का समय था। किंतु, 1950 के दशक के मध्य में रिज़र्व बैंक द्वारा अपवाद के रूप में सरकारी घाटे का किया गया स्व-मुद्रीकरण बाद में एक नियमित प्रथा ही बन गया । इसके साथ-साथ, 1969 और 1980 में प्रमुख वाणिज्य बैंकों के राष्ट्रीयकरण से वित्तीय क्षेत्र के प्रबंधन में स्पष्ट बदलाव आया। इन दो घटनाओं से मौद्रिक प्राधिकारी (भारतीय रिज़र्व बैंक) और राजकोषीय प्राधिकारी (सरकार) के बीच के रिश्ते पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा।

1980 के दशक में राजकोषीय स्थिति में भारी गिरावट आयी जिसके साथ सरकारी घाटों का भारी और स्व-मुद्रीकरण भी था। इस प्रक्रिया में तदर्थ खजाना बिलों का निर्गम शामिल था जो प्रारंभ में 91 दिवसीय खजाना बिलों के समरूप दर पर जारी किए जाते थे। जुलाई 1974 से तदर्थ खजाना बिल 4.6 प्रतिशत के बाजारेतर बट्टे पर प्रस्तावित किए जाने लगे और यह दर विद्यमान बाजार दरों के आधे से कम होती थी। इसके दो परिणाम तुरंत सामने आए। एक, जब सरकार के भारी घाटे का स्व-मुद्रीकरण किया जाता था तब प्रणाली में अत्यधिक चलनिधि आ जाती थी जिसने मौद्रिक प्राधिकारी को प्रेरित किया कि वह प्रणाली से अतिरिक्त चलनिधि निकाल लेने के लिए नियमित अंतरालों पर बैंकों के लिए नकदी आरक्षित निधि अनुपात (सीआरआर) बढ़ाता रहे। दो, केंद्र सरकार को सुविधाजनक रूप से उधार मिलने में सहायता की दृष्टि से मौद्रिक प्राधिकारी, जो सरकार का ऋण प्रबंधक भी है, ने आवधिक रूप से सांविधिक चलनिधि अनुपात (एसएलआर) बढ़ाया जो कि बैंकों द्वारा बनाए रखा जाता है। यह प्रक्रिया आगे बढ़ती रही और एक समय ऐसा आया जब सीआरआर और एसएलआर में संयुक्त रूप से बैंकिंग क्षेत्र की देयताओं का 50 प्रतिशत से अधिक भाग था। दूसरे शब्दों में, बैंकिंग क्षेत्र के संसाधनों का 50 प्रतिशत से अधिक भाग प्राथमिक रूप से सरकारों के बजट घाटों के वित्तपोषण के उपयोग में आ रहा था। इसके अलावा, बैंकों की जमा और उधार दरें अधिकांश अवधि में प्रशासित थीं। इससे बैंकिंग प्रणाली स्थिति प्रभावित हुई और परिणाम-स्वरूप बैंकिंग क्षेत्र की सुधार प्रक्रिया के दौरान किए गए समायोजन सामान्य रूप से कुछ जटिल हो गए।

भारी राजकोषीय घाटे और उसके मुद्रीकरण का बाह्य क्षेत्र पर कुछ दीर्घावधि प्रभाव हुआ जो 1980 के दशक के अंतिम समय और 1990 के दशक के प्रारंभ में चालू खाता घाटा की वृद्धि में दिखाई दिया। 1990 के दशक के प्रारंभ के भुगतान संतुलन संकट, जब हमारी विदेशी मुद्रा आस्तियां तेजी से कम हो गई थीं और वे मात्र दो सप्ताहों के आयात के वित्तपोषण योग्य ही रह गई थीं, के कारण 1991-92 में हमने सुधार प्रक्रिया प्रारंभ कर दी। व्यापार, उद्योग, विदेशी निवेश, विनिमय दर, सरकारी वित्त और वित्तीय क्षेत्र को समाहित करते हुए एक विश्वसनीय समष्टि आर्थिक ढांचागत और स्थिरीकरण कार्यक्रम शुरू किया गया जिसने ऐसा वातावरण तैयार किया जो व्यापार और निवेश के विस्तार के लिए पोषक था। उसी के साथ, सरकारी उधार के बाजारीकरण की दिशा में अनेक सुधार उपाय शुरू किए गए।

गवर्नर के रूप में मेरे प्रतिष्ठित पूर्ववर्ती डा. रंगराजन के अनुरोध पर रिज़र्व बैंक ने स्व-मुद्रीकरण पर सीमा निर्धारित करने के लिए 1994 में सरकार के साथ पहला समझौता किया। रिज़र्व बैंक और भारत सरकार के बीच पहला अनुपूरक समझौता 1994 में

हुआ जिससे 1996-97 को समाप्त तीन वर्षीय अवधि के दौरान तदर्थ खजना बिलों पर सीमा रखने की प्रणाली स्थापित हुई। फिर 1997 में, अर्थात् रिज़र्व बैंक में मेरे प्रवेश के तुरंत बाद, सरकार के साथ दूसरा समझौता किया गया जिसमें सरकार का प्रतिनिधित्व मोंटेक सिंह आहलुवालिया ने किया था। रिज़र्व बैंक और भारत सरकार के बीच 6 मार्च 1997 में हुए इस दूसरे अनुपूरक समझौते के अनुसरण में अप्रैल 1997 से तदर्थ खजाना बिल पूर्णतः समाप्त कर दिए गए और उनके स्थान पर अर्थोपाय अग्रिम की योजना शुरू की गई जो सीमा के अंतर्गत होती है। अंतरण की सुगमता की दृष्टि से, भारत सरकार को ओवरड्राफ्ट की भी अनुमति दी गई थी किंतु इसमें प्रभार्य ब्याज दर अर्थोपाय अग्रिमों (डब्ल्यूएमए) पर प्रभार्य ब्याज दर से अधिक रखी गई। 1 अप्रैल 1999 से इन ओवरड्राफ्टों के लिए अधिकतम दस कार्य दिवसों की अनुमति दी गई । इन विशेषताओं ने केंद्र सरकार को राज्य सरकारों के समरूप कर दिया जिन्हें 1985 से ओवरड्राफ्ट विनियमन योजना के अंतर्गत लाया गया था। इसके अलावा, यह सहमति हुई थी कि डब्ल्यूएमए सीमा के 75 प्रतिशत पर पहुंचने पर रिज़र्व बैंक सरकारी प्रतिभूतियों के नए निर्गम करेगा। यह भी सहमति हुई थी कि सरकार का रिज़र्व बैंक में निर्धारित स्तर से अधिक रखे अतिरिक्त नकदी शेष का रिज़र्व बैंक सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश करेगा। स्वयंपूर्ण डब्ल्यूएमए और ओवरड्राफ्ट प्रणाली में अंतरण क्रमिक, सुगम और सम्मतिपूर्ण होने के साथ ही इस प्रणाली के सफल कार्यान्वयन ने इनमें से कुछ व्यवहारों का कानून - राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंधन अधिनियम (एफआरबीएम अधिनियम) - में समावेश संभव बनाया। यह उल्लेखनीय है कि इस कानून ने रिज़र्व बैंक के सभी सरकारी प्रतिभूतियों के प्राथमिक निर्गम में सहभागी होने पर व्यावहारिक तौर पर प्रतिबंध लगाया।

1990 के दशक के पूर्वार्ध में कर सुधार, व्यय प्रबंधन, संस्थागत सुधार और वित्तीय क्षेत्र के सुधार के माध्यम से राजकोषीय संतुलन की पुनर्स्थापना पर केंद्रित प्रयासों के परिणामस्वरूप 1991 से 1997 की अवधि के दौरान राजकोषीय घाटे और जीडीपी-ऋण अनुपात में काफी कमी आयी। किंतु 1997 से 2003 की अवधि के दौरान राजकोषीय समेकन की प्रवृत्ति उलट गई और औद्योगिक मंदी, पांचवें वेतन आयोग के निर्णय तथा राजस्व के आशा से कम रह जाने के संयुक्त प्रभाव ने राजकोषीय स्थिति पर बुरा असर डाला। भारत की राजकोषीय स्थिति ऐसे समय खराब हुई जब वैश्विक राजकोषीय स्थिति में सुधार आ रहा था और भारत वैश्वीकरण के लिए प्रयासरत था। यह याद करना महत्वपूर्ण है कि भारत की राजकोषीय स्थिति वैश्विक राजकोषीय स्थिति से काफी भिन्न रही है और यह भिन्नता अब तक बनी हुई है। मैं सोचता हूं कि यह वह पृष्ठभूमि है जिसे हमें भारत में आर्थिक सुधारों की गति और स्थिति पर चर्चा के समय ध्यान में रखना होगा। एफआरबीएम अधिनियम, 2003 के 5 जुलाई 2004 को लागू होने को इसी पृष्ठभूमि में देखा जाना चाहिए जिसने नियम आधारित राजकोषीय समेकन के लिए ढांचा स्थापित किया है।

2003 के बाद की अवधि में केंद्र सरकार की राजकोषीय स्थिति में सुधार हुआ है, यद्यपि अनेक ऐसे अंतर्निहित राजकोषीय दबाव हैं जो संख्या की दृष्टि से स्पष्ट नहीं हैं और जो बाद में स्पष्ट किए जाएंगे। राज्यों की राजकोषीय स्थिति में भी इस अवधि

के दौरान काफी सुधार हुआ है और उनका राजस्व घाटा लगभग समाप्त हो गया है। किंतु, केंद्र के जैसे ही राज्यों के मामले में भी कुछ अंतर्निहित दबाव हैं जो राजकोषीय संख्याओं में प्रकट नहीं हुए हैं।

केंद्र तथा राज्य दोनों के राजकोषीय परिदृश्य में पर्याप्त सुधार होने के बावजूद जीडीपी के प्रतिशत के रूप में भारत का संयुक्त राजकोषीय घाटा (केंद्र और राज्य) विश्व के अधिकतम में से एक बना हुआ है। प्रो. राव भी इस बात को अलग से विस्तृत रूप से स्पष्ट करेंगे कि बाह्य ऋण सहित भारत का सार्वजनिक ऋण, जीडीपी के प्रतिशत के रूप में, विश्व के अधिकतम में से एक है। इस संदर्भ में, यू.के. स्थित इकोनॉमिस्ट नामक साप्ताहिक पत्रिका (17 नवंबर 2007 - पृष्ठ 75-77) ने भारत को तुर्की और हंगरी के साथ चुनिंदा प्रमुख उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में सर्वाधिक जोखिम वाली अर्थव्यवस्थाओं की श्रेणी में रखा है। इकोनॉमिस्ट ने जोखिम के स्तर निर्धारण के अपने निष्कर्ष चालू खाता शेष, बजट शेष, मुद्रास्फीति और बैंक उधार में वृद्धि जैसे मानक मानदंडों के आधार पर निकाले हैं। जोखिम के आकलन में इन मानदंडों की संगतता को कोई भी नकार नहीं सकता। फिर भी यह महत्वपूर्ण है कि इन जोखिमपूर्ण घटकों में से अधिकांश भारतीय अर्थव्यवस्था में वर्षों से मौजूद रहे हैं, लगभग पूरी सुधार अवधि के दौरान और फिर भी अर्थव्यवस्था ने समष्टि-स्थिरता और प्रभावी विकास दिखाया जबकि उसे कुछ महत्वपूर्ण देशी और वैश्विक आघातों का सामना भी करना पड़ा था। इस बात को ध्यान में रखते हुए, उन करणों का पता लगाने, जिनके कारण ऐसे जोखिम हमारी अर्थव्यवस्था को अब तक अस्थिर नहीं कर पाए हैं और भविष्य में जरूरत पड़ने वाले उन उपायों का पता लगाने की आवश्यकता है जो व्यावहारिक सीमा तक ऐसी अस्थिरता को रोकने के लिए आवश्यक होंगे। मैं सोचता हूं कि यह महत्वपूर्ण है कि आर्थिक सुधारों की दिशा और साथ ही गंतव्य पर कुछ समझौतों के बावजूद सुधारों की गति और लक्ष्य के विश्लेषण के समय उक्त व्यापक दृश्य को ध्यान में रखा जाए।

राजकोषीय सुधार में रिज़र्व बैंक की भूमिका

अब, मुझे राजकोषीय सुधार में रिज़र्व बैंक की भूमिका संक्षेप में स्पष्ट करने दीजिए। केंद्रीय बैंक के रूप में हम सामान्यतः राजकोषीय स्थिति के प्रति संवेदनशील होते हैं। यह सत्य नहीं है कि रिज़र्व बैंक इस बात के प्रति सचेत नहीं था कि पहले तीन दशकों (1950 से 1980) के दौरान राजकोषीय पक्ष में जो हो रहा था उसके प्रभाव क्या होंगे। संस्थागत व्यवस्था के कारण, रिज़र्व बैंक का पहला लक्ष्य मौद्रिक स्थिरता बनाए रखना है। यह स्पष्ट था कि राजकोषीय स्थिति कुछ ऐसी थी जो शासन द्वारा निर्णीत और निर्धारित की जाती है। शासन द्वारा राजकोषीय स्थिति एकबार निर्णीत और निर्धारित हो जाने के बाद यह केंद्रीय बैंक का दायित्व होता है कि वह यह सुनिश्चित करे कि मौद्रिक स्थिरता बनी रहे और सरकार का उधार कार्यक्रम, स्थिरता के संदर्भ में, न्यूनतम अवरोध के साथ प्रबंधित हो जाए। कुछ लोग तर्क देते हैं कि मौद्रिक कार्रवाई के माध्यम से राजकोषीय दबाव को संभालना ऐसा ही है जिसे कुछ लोग नरम-बजट बाधा कहते हैं।

अब मैं पुनः सुधार प्रक्रिया पर आकर यह बतलाना चाहता हूं कि पिछले वर्षों के स्व-मुद्रीकरण के अवशेषों से कैसे छुटकारा पाया गया। तदर्थ खजाना बिलों का स्टॉक, जब हमने ऐसे बिलों का निर्गम बंद किया था, 1,00,000 करोड़ रुपए से अधिक का था । यह स्टॉक वस्तुतः स्थायित्व में सरकारी ऋण था जो रिज़र्व बैंक में धारित था और इस पर 4.6 प्रतिशत की बट्टा दर थी, यद्यपि बाजार दर बहुत अधिक थी। सरकार

के साथ समन्वय से यह सहमति हुई थी कि इन पेपरों को चरणबद्ध रूप से बाजार से संबंधित दरों पर दिनांकित बिक्री योग्य प्रतिभूतियों में परिवर्तित किया जाएगा और यह कार्य बाजार की स्थिति पर निर्भर करेगा जिसमें रिज़र्व बैंक द्वारा खुले बाजार के परिचालन आवश्यक होते हैं। इस प्रकार, तदर्थ खजाना बिलों का स्टॉक समाप्त हो गया। यह इस बात का सबूत है कि रिज़र्व बैंक सरकार के साथ समन्वय करके सुधार प्रक्रिया को कैसे गैर विघटनकारी तरीके से निर्धारित तथा कार्यान्वित करता है।

मैं एफआरबीएम अधिनियम संबंधी एक कहानी आपको बतलाना चाहता हूँ। एक दिन गवर्नर जालान ने कहा कि वित्त मंत्री राजकोषीय जवाबदेही विधेयक (तब यह प्रस्तावित नाम था) के प्रस्तुत करने की घोषणा कर रहे हैं। गवर्नर जालान ने कहा कि उन्होंने मंत्री के साथ चर्चा की थी और उन्होंने निर्णय लिया था कि वे मुझे राजकोषीय जवाबदेही विधेयक का मसौदा समिति का अध्यक्ष बनाएंगे। मैंने कहा कि राजकोषीय मामलों संबंधी विधान पर सरकारी अधिकारियों को कार्य करना चाहिए और रिज़र्व बैंक को इसमें शामिल नहीं होना चाहिए क्योंकि राजकोषीय जवाबदेही विधेयक का स्वामित्व सरकार का होना चाहिए। गवर्नर जालान इस बात से सहमत नहीं हुए और उन्होंने कहा कि ''नहीं, यह निर्णय लिया गया है कि यह कार्य आप करेंगे'' अतः, अंततः हमने समझौता किया। 2000 में एक मुख्य औपचारिक समिति गठित की गई जिसके अध्यक्ष तत्कालीन सचिव, आर्थिक कार्य, डा. ई.ए.एस.शर्मा थे और डा. अशोक लाहिरी एक सदस्य थे; राजकोषीय जवाबदेही विधेयक का मसौदा तैयार करने के विभिन्न पहलुओं पर मुख्य समिति को तकनीकी सहायता देने के लिए रिज़र्व बैंक के अधिकारियों को शामिल करते हुए एक कार्य दल बनाया गया जिसका अध्यक्ष मैं था। राजकोषीय जवाबदेही विधेयक का मसौदा तैयार करने में शर्मा समिति के साथ रिज़र्व बैंक कार्य दल सक्रिय रूप से सहभागी था। हमारे निमंत्रण पर आइएमएफ के श्री प्रेमचंद ने हमारे साथ कुछ समय बिताया और इस संबंध में अंतरराष्ट्रीय सर्वोत्तम प्रथाओं से हमें अवगत कराया। इस समय, हमने सरकार को सूचित किया कि पारदर्शी बजट प्रबंधन नियम और मध्यावधि राजकोषीय संरचना को शामिल किए बिना राजकोषीय जवाबदेही का लक्ष्य पूरा नहीं होगा। उसके बाद, अतिरिक्त विशेषताएं शामिल करके इस विधेयक का नाम परिवर्तित करके ''राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंधन विधेयक'' किया गया। संक्षेप में, मैं यह स्पष्ट कर रहा हूं कि रिज़र्व बैंक सरकार के साथ सक्रिय रूप से सहयोग करता आ रहा है, किंतु उचित औचित्य के साथ।

हमारा अनुभव यह दर्शाता है कि एफआरबीएम अधिनियम का राजकोषीय मामलों पर ध्यान केंद्रित करने पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। साथ ही इससे कभी-कभी अनजाने ही वृद्धिशील बजटेतर राजकोषीय देयताओं का सहारा लेने में वृद्धि होती है। ऐसी प्रथा अनेक देशों में पूर्णतः असामान्य नहीं है किंतु भारत में बजटेतर देयताओं का सहारा लेने की निरंतरता और संबंधित मात्रा बहुत अधिक है। यह मामला मात्र राजकोषीय परिचालनों में पारदर्शिता या वास्तव में सहमति से अधिक सरकार के उधार कार्यक्रम का नही हैं बल्कि इसका सरकारी ऋण बाजार और मौद्रिक प्रबंधन पर महत्वपूर्ण प्रभाव होता है।

पुराना अनुभव स्पष्टतः दर्शाता है कि ऐसी बजटेतर मदों का सहारा लेना तदर्थ या एक बार नहीं है। सरकारी बांडों के निर्गम का बार-बार सहारा न सिर्फ ईंधन, खाद्यान्न और उर्वरकों की सब्सिडी के वित्तपोषण के लिए बल्कि सरकारी क्षेत्र के बैंकों के

पूंजी में योगदान और बैंक ऋण माफी संबंधी आस्थगित देयताओं के वित्तपोषण के लिए भी लिया जाता है। अतः, वैश्विक मूल्यों में पर्याप्त परिवर्तन होने तक या सब्सिडी की बारंबारता और आस्थगित देयताओं संबंधी नीति में परिवर्तन होने तक ऐसे विशेष बांडों की निरंतरता से इंकार नहीं किया जा सकता। वास्तविक उधार के माध्यम से बार-बार के राजस्व व्यय के वित्तपोषण के लिए महत्वपूर्ण अर्ध राजकोषीय लेनदेनों से राजकोषीय, बाह्य और मौद्रिक प्रबंधन के बीच संपर्क के प्रबंधन में चुनौती खड़ी होती है।

रिज़र्व बैंक ने एफआरबीएम पर राज्य सरकारों को भी सूचना दी है। रिज़र्व बैंक ने एक फोरम उपलब्ध कराया है जो विचारों के आदान-प्रदान के लिए और मामले सुलझाने के लिए राज्य सरकारों के वित्त सचिवों को एकत्र लाता है। रिज़र्व बैंक की मेजबानी में 1996 में प्रारंभ किए गए राज्य के वित्त सचिवों के द्विवार्षिक सम्मेलन में भारत सरकार के वित्त मंत्रालय के सचिव, योजना आयोग के प्रतिनिधि, नियंत्रक और महालेखापरीक्षक (सीएजी) और महालेखापाल (सीजीए)भी सहभागी होते हैं। इन द्विवार्षिक सम्मेलनों में होनेवाली चर्चा राज्य सरकारों के वित्त के संबंध में सामान्य मामलों की पहचान करने और सर्वोत्तम प्रथाएं बनाने में बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है। इन बैठकों में हुई चर्चा के परिणामस्वरूप पारदर्शिता आदि सुनिश्चित करने के लिए बजट की रिपोर्ट देने संबंधी दस्तावेजों के संदर्भ और फार्मेट में बदलाव के अलावा अर्थोपाय अग्रिम संबंधी अनेक महत्वपूर्ण पहलों, बाजार उधार कार्यक्रम के प्रति दृष्टिकोण, अधिशेषों के निवेश, राज्य सरकारों की गारंटियों पर उच्चतम सीमा, राज्य स्तरीय राजकोषीय विधान के लिए मॉडल योजना उभरी और उसे आकार मिला। रिज़र्व बैंक ने इस फोरम के माध्यम से राज्य सरकारों को राज्य स्तरीय एफआरबीएम विधान तैयार करने में भी मदद की है।

प्रसंगवश, भारत में पेंशन निधि पर पहला अनुसंधान और नीति पेपर डा. उर्जित पटेल ने तैयार किया था जो हमारे साथ काम कर चुके हैं। उन दिनों आंकड़े प्राप्त करना बहुत कठिन कार्य था जिससे हमें दिल्ली में विभिन्न कार्यालयों में अपने अनौपचारिक संबंधों और अपने पुराने साथिओं का सहारा लेना पड़ा ताकि डा. पटेल को संबंधित सूचना तक पहुंच मिल सके। डा. पटेल ने बहुत अच्छा कार्य किया और फिर इकॉनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली में एक लेख प्रकाशित किया। इस प्रकार, पेंशन पर सरकारी नीति एक प्रकार से हमारे अनुरोध पर रिज़र्व बैंक में परामर्शदाता द्वारा किए गए कार्य से प्रेरित हुई। रिज़र्व बैंक ने राज्य सरकारों के कर्मचारियों की पेंशन पर रिपोर्ट पर भी कार्य किया। यह रिज़र्व बैंक और सरकारों के बीच सहयोग का एक और उदाहरण है और हमारा दृष्टिकोण अक्सर स्वीकार किया जाता है। अब मैं राजकोषीय और मौद्रिक प्रबंधन के मामलों पर आना चाहता हूँ।

राजकोषीय और मौद्रिक प्रबंधन

मैं मौद्रिक प्रबंधन संबंधी मामलों पर रिज़र्व बैंक के सरकार के साथ संबंधों पर रिज़र्व बैंक का सामान्य दृष्टिकोण स्पष्ट करना चाहता हूँ। राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंधन विधेयक तैयार करने के मामले में दर्शाए अनुसार ढांचागत सुधारों के लिए सरकार और रिज़र्व बैंक के बीच समन्वय आवश्यक है, विशेष रूप से तब जब इसमें कानूनी और संस्थागत बदलाव शामिल हों। मौद्रिक नीति संबंधी परिचालनगत मामलों के संबंध में कुछ स्वतंत्रता है किंतु अर्थव्यवस्था में

राजकोषीय प्रभुत्व की दृष्टि से स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए मुख्य दृष्टिकोण राजकोषीय नीति के साथ मौद्रिक नीति में तालमेल बैठाने का रहा है। इस संरचना के भीतर, पारस्परिक सहयोग के माध्यम से सरकार और रिज़र्व बैंक ने सुधार के अनेक उपाय किए हैं जिनमें से कुछ को मैं यहां बतलाना चाहूंगा।

पहला, सांविधिक चलनिधि अनुपात (एसएलआर) क्रमिक रूप से घटाकर 21 अक्तूबर 1997 से 25 प्रतिशत के तत्कालीन सांविधिक न्यूनतम स्तर पर लाया गया। साथ ही, सीआरआर भी प्रथम चरण के रूप में चलनिधि स्थिति के आधार पर कम किया गया जिसमें अंतिम लक्ष्य इसे 3 प्रतिशत के सांविधिक न्यूनतम स्तर पर लाना था। इस बीच, न्यूनतम आरक्षित निधि और चलनिधि की अपेक्षा के सांविधिक निर्धारण को समाप्त करने की रिज़र्व बैंक की प्रतिबद्धता के अनुसार उक्त न्यूनतम स्तर समाप्ति के लिए इसने सरकार के सामने विधान में संशोधन का प्रस्ताव रखा। अब ये विधान पारित हो गए हैं। अब एसएलआर और सीआरआर के लिए कोई भी न्यूनतम सांविधिक स्तर नहीं है।

अब सीआरआर और एसएलआर निर्धारण कम करने की चुनौती है। सीआरआर कम करना चलनिधि स्थिति और इसे अन्य साधनों के साथ निष्प्रभावीकरण के साधन के रूप में उपयोग में लाने की आवश्यकता पर निर्भर करेगा। एसएलआर कम करना प्राथमिक रूप से सरकार की राजकोषीय स्थिति से नियंत्रित होगा। यह मामला वांछित लक्ष्यों में से एक का नहीं है, बल्कि इष्टतम रूप से मार्ग चुनने का है। रिज़र्व बैंक के पास इस मामले में आगे बढ़ने के दो विकल्प हैं। यह तो हम राजकोषीय स्थिति को स्वीकार करें तथा एसएलआर में और कमी लाने के लिए उसमें सुधार का इंतजार करें या इसके निर्धारण को राजकोषीय स्थिति और बाजार की गतिविधियों के अनुरूप क्रमिक रूप से कम करें। अतः, ये विकल्प के प्रकार हैं जिनका हम इस समय सामना कर रहे हैं और रिज़र्व बैंक राजकोषीय स्थिति का आकलन करके कमी करने की ओर सावधानीपूर्वक बढ़ने को तरजीह देता है।

दूसरा, हाल की अवधि में सामने आया मामला रिज़र्व बैंक में रखे सरकारी नकदी शेष की उच्च अस्थिरता का है जो वित्तीय बाजारों की चलनिधि को प्रभावित करती है। सरकारी नकदी शेष की अस्थिरता भारतीय स्थिति में अनूठी नहीं है बल्कि यह मामला दूसरे देशों में भी है, किंतु हमारी स्थिति में अब यह बहुत महत्वपूर्ण हो गया है। यह ऐसा होता है कि कभी-कभी सरकारी नकदी शेष और बाह्य स्थिति अलग दिशाओं में बढ़ती है और वे समग्र मौद्रिक प्रबंधन की दृष्टि से चलनिधि पर बहुत कम निवल प्रभाव डालते हैं। किंतु, कभी-कभी वे एक ही दिशा में चलते हैं और इस स्थिति में चलनिधि की अस्थिरता अत्यधिक बढ़ जाती है। मौद्रिक प्रबंधन में यह एक महत्वपूर्ण चालू मामला है जो सरकार में नकदी प्रबंधन से लिंक किया जा सकता है। मुद्रा बाजार में उचित चलनिधि स्थिति बनाए रखने और मौद्रिक परिचालनों के लिए अल्पावधि एक दिवसीय ब्याज दरों को प्रभावी रूप से उपयोग में लाने के लिए यह लिंक महत्वपूर्ण है।

तीसरा, केंद्र और राज्यों के संयुक्त राजकोषीय घाटे की मात्रा घरेलू वित्तीय बचत, जो देशी बचत का सबसे बड़ा घटक है, की लगभग आधी है। यदि घरेलू वित्तीय बचतों का पचास प्रतिशत सरकारी क्षेत्र ले जाता है तो वित्तीय बाजारों की स्थिरता सुनिश्चित

करने पर भारी असर होगा क्योंकि गैर सरकारी उत्पादक क्षेत्रों की निधि की मांग भी साथ-साथ पूरी करनी होती है।

चौथा, भारत अब भी बैंक प्रभुत्व वाली प्रणाली है और लगभग 70 प्रतिशत बैंक (कारोबार के संदर्भ में) सरकारी स्वामित्व वाले हैं। इस प्रकार, हम ऐसी स्थिति में हो सकते हैं जब मौद्रिक नीति एक दूसरे की ओर अभिमुख होने का लक्ष्य और बैंकिंग लेनदेन की व्यापक सरकारी नीति का लक्ष्य हो सकता है जिसमें मौद्रिक नीति बहुत प्रभावी हो सकती है। कभी-कभी, ऐसा हो सकता है कि मौद्रिक नीति का लक्ष्य और व्यापक सरकारी नीति का लक्ष्य समाभिरूप न हो और ऐसी स्थिति में मौद्रिक नीति उतनी प्रभावी न हो। दूसरे शब्दों में, मौद्रिक नीति की प्रभावशीलता न केवल मौद्रिक प्राधिकारी की कार्रवाइयों पर बल्कि सरकारी नीति के अन्य रूपों पर भी निर्भर करती है। इससे मौद्रिक प्रबंधन निश्चित रूप से जटिल हो जाता है। निसंदेह, सरकारी क्षेत्र के बैंकिंग और सरकारी स्वामित्व में हित-संघर्ष का मुद्दा एक अलग मामला है। निजी क्षेत्र के बैंकों में हित-संघर्ष का मामला तब उभरता है जब बैंक का स्वामी अपने ही बैंक से उधार लेता है। सरकार के लिए उधार का सबसे बड़ा एकल स्रोत सरकार के स्वामित्व के बैंक ही होने के कारण इस संघर्ष का रूप स्पष्ट है।

पांचवां, भारत में ब्याज दर ढांचे को कड़ा बनानेवाले कारकों में से एक प्रशासित ब्याज दरें हैं, विशेष रूप से अल्प बचत लिखतों पर । इस संदर्भ में, सरकार द्वारा अनेक अल्प बचत योजनाओं और भविष्य निधि पर प्रशासित ब्याज दरों का विशेष महत्त्व है क्योंकि ये दरें बाजार में उपलब्ध ऐसे ही दूसरे लिखतों पर देय दरों से अलग होती हैं और कुछ मामलों में इनके साथ कर-प्रोत्साहन भी होता है। प्रशासित ब्याज दरों का बचत के स्तर और विनिधान पर बहुत असर होता है। उधार पक्ष में भी बैंकों के लिए कुछ प्रशासित निर्धारण होते हैं। प्रशासित ब्याज दर ढांचे की बचत और उधार दोनों पक्षों पर जिस प्रकार गणना की जाती है, उस आधार पर यह लगभग 25 से 40 प्रतिशत पर लागू होगा। इस संदर्भ में, यह ध्यान में लेना संगत होगा कि मौद्रिक नीति मुख्यतः ब्याज दरों तथा ब्याज दर संकेतकों के माध्यम से कार्य करती है और मौद्रिक नीति संप्रेषण प्रणाली संबंधी मामलों पर कार्य करते समय प्रशासित ब्याज दरों से उत्पन्न बाधाओं को विधिवत पहचानना होगा।

छठा, सैद्धांतिक रूप से यह भलीभांति माना गया है कि राजकोषीय नीति की तुलना में मौद्रिक नीति सामान्यतः अधिक प्रभावी प्रति-चक्रीय नीति साधन है क्योंकि ब्याज दर परिवर्तन शीघ्रता से किए और उलटे जा सकते हैं। किंतु, मौद्रिक नीति समायोजन कुल मांग को प्रभावित करने में राजकोषीय नीति समायोजन से अधिक समय ले सकते हैं। यह बात भी मान ली गई है कि राजकोषीय नीति कर-प्रभाव और कुल मांग के आय-संवेदी (ब्याज-संवेदी के अलावा) घटकों पर सरकारी व्यय के माध्यम से व्यापक आधार की स्थिरता में योगदान करती है। जब निष्पादन अंतरों के प्रतिसाद में मौद्रिक नीति पर इस प्रकार से सीमा लग जाती है तब राजकोषीय नीति को सामान्यतः अधिक केंद्रीय भूमिका में आना चाहिए। इस प्रकार, राजकोषीय नीति और मौद्रिक नीति के बीच प्रभावी समन्वय महत्वपूर्ण है। एक अधिक समग्र स्तर पर, वैश्विक घटनाओं के प्रतिसाद में हमारी क्षमता के संदर्भ में, यदि हमारे पास प्रति-चक्रीय नीति दृष्टिकोण है तो न सिर्फ मौद्रिक नीति बल्कि राजकोषीय नीति भी प्रति-चक्रीय होनी चाहिए।

यदि राजकोषीय नीति निरंतर घाटे के साथ लगातार एक ही दिशा में रहेगी, जैसा कि हमारे मामले में है, तो राजकोषीय नीति उपयुक्त प्रति-चक्रीय प्रभावोत्पादन की स्थिति में नहीं होगी। ऐसी स्थिति में, मौद्रिक नीति के सामने उपयुक्त प्रति-चक्रीय नीतियां बनाने और उन्हें लागू करने की चुनौती होगी जोकि राजकोषीय नीति के प्रभाव को निष्प्रभ करने का अतिरिक्त दायित्व है। इन चुनौतियों के बावजूद, रिज़र्व बैंक ने स्थिति अच्छी तरह संभाली है और हमें विश्वास है कि हम स्थिति को लगातार संभाल लेंगे। किंतु, यह समझ लेना बहुत महत्वपूर्ण है कि कभी-कभी रूढ़ि विरुद्ध नीतियों ने राजकोषीय दबाव के बावजूद भारतीय वित्तीय प्रणाली की स्थिरता सुनिश्चित की है जो कि पूर्व निर्धारित नियमों से विधिपूर्ण अनुपालन प्राप्त करने की तुलना में वांछित परिणाम है।

कुल मिलाकर, ये उस लिंक के कुछ उदाहरण हैं जो राजकोषीय और मौद्रिक प्रबंधन के बीच विद्यमान होती है। हम राजकोषीय सुदृढ़ता में हुई प्रगति को ध्यान में रखते हुए मौद्रिक नीति ढांचे और मौद्रिक नीति संचालन को निरंतर परिष्कृत कर रहे हैं। मौद्रिक नीति ढांचे और मौद्रिक नीति संचालन में सुधार को राजकोषीय तथा संबंधित संस्थागत और साथ ही नीतिगत बाधाओं की पहचान करनी होगी। यह वह सीमित बिंदु है जो मैं उन लोगों के सामने लाना चाहता हूँ जो चालू मौद्रिक प्रबंधन ढांचे के प्रति अधैर्यशील हैं।

अब मैं राजकोषीय और वित्तीय बाजार पर आना चाहूंगा।

राजकोषीय और वित्तीय बाजार

पहला, राजकोषीय और वित्तीय बाजार के बीच सर्वप्रथम लिंक सरकारी प्रतिभूति बाजार के माध्यम से होती है। पहले ही विस्तार से स्पष्ट किए अनुसार, पूर्ववर्ती समय में केंद्र सरकार का उधार कार्यक्रम बड़ी मात्रा में मुद्रीकृत किया जाता था। यह जानना आपके लिए काफी दिलचस्प होगा कि उधार कार्यक्रम का एक बड़ा भाग राजकोषीय वर्ष की प्रथम छमाही में पूरा करना होता है, निजी तौर पर ऋण मांग के मौसमीपन को देखते हुए, केंद्र का मासिक औसत सकल बाजार उधार हाल के वर्षों में जीडीपी के एक प्रतिशत का लगभग तीन चौथाई रहा है। सरकार के इस उच्च स्तरीय उधार कार्यक्रम के बावजूद, ऋण प्रबंधक के रूप में रिज़र्व बैंक वर्षों से बाजार उधार कार्यक्रम सफलतापूर्वक पूरा करता आ रहा है और साथ ही संस्था, लिखत, प्रोत्साहन और कार्यनीति के संदर्भ में अनेक उपायों का सहारा लेते हुए बाह्य संतुलन को नुकसान पहुंचाए बिना अपने ब्याज दर लक्ष्य भी पूरे कर रहा है।

दूसरा, एक महत्वपूर्ण मामला जो रह जाता है वह यह है कि जब हमारे यहां सांविधिक चलनिधि अनुपात निर्धारण 25 प्रतिशत है तब हम यह दावा नहीं कर सकते कि भारत में भारतीय प्रतिभूतियों के लिए वास्तविक बाजार उपलब्ध है। प्रश्न यह है कि क्या हम इस अनुमान पर आगे बढ़ सकते हैं कि एक वास्तविक सरकारी प्रतिभूति बाजार उपलब्ध है और इसीलिए एसएलआर को तेजी से कम करके अधिक बाजारीकरण लागू कर सकते हैं या हम व्यवहार्य बाजार उधार कार्यक्रम सुनिश्चित करके उसी के अनुरूप एसएलआर कम करें? यहां पुनः एसएलआर तेजी से कम होने की स्थिति में क्या रिज़र्व बैंक को ब्याज दर भार के प्रति राजकोषीय संवेदनशीलता का मूल्यांकन करना होगा? सरकार द्वारा जारी बांडों के लिए एसएलआर की स्थिति का महत्व हाल में तब

सामने आया था जब भारत सरकार द्वारा जारी तेल बांड अतरल हो गए थे जबकि उन पर प्राप्त आय उसी अवधिपूर्णता के लिए एसएलआर-पात्र बांडों की तुलना में 25 आधार अंक अधिक थी। जैसे-जैसे हम आगे बढ़ते हैं, भारत में ऋण बाजारों के सुधारों ने इन वास्तविकताओं को पहचानना चाहिए।

तीसरा, राज्य सरकारों के मामले में जब हमने एकल राज्यों के उधार कार्यक्रम के बाजारीकरण का प्रयास किया तब बहुत से राज्य अच्छी स्थिति में नहीं थे। वे इस बात से आश्वस्त नहीं थे कि रिज़र्व बैंक द्वारा सभी राज्यों के उधार कार्यक्रम सभी राज्यों के लिए एकसमान शर्तों पर समन्वित तरीके से प्रबंधित किए बिना उन्हें उनके बांडों के लिए अभिदान मिल पाएगा या नहीं? यह जानते हुए कि बैंकों को इस कार्यक्रम में अभिदान करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता, रिज़र्व बैंक निवेशकों को एक जैसी परिपक्वता के राज्यों के पेपर पर केंद्र के पेपर की तुलना में अधिक आय देता है। बाद में, हमने कुछ राज्यों को स्टैंड अलोन आधार पर नीलामी माध्यम से जाने के लिए प्रोत्साहित किया। अब रिज़र्व बैंक के लिए प्रत्येक राज्य का उधार कार्यक्रम नीलामी माध्यम से बाजार में बिना किसी गंभीर समस्या के संचालित करना संभव हुआ है। इसके परिणामस्वरूप, कुछ राज्यों ने अपनी राजकोषीय प्रोफाइल सुधारने और बैंकों के प्रति उनकी देयताओं के शीघ्र निपटान के लिए कार्रवाई शुरू कर दी है जिससे ऋण बाजार में उनके साथ तुलनात्मक रूप से बेहतर व्यवहार हो रहा है । रिज़र्व बैंक को राज्य सरकारों और बाजारों को इस प्रकार के अनुशासन से अनुरूप करवाने में छह-सात वर्ष लगे। यह शायद इस कारण से संभव हो पाया कि राज्य सरकारें रिज़र्व बैंक में एक गैर राजनीतिक और व्यावसायिक सार्वजनिक संस्था के रूप में विश्वास करती हैं।

चौथा, ध्यान देने योग्य अन्य मुद्दा वित्तीय संस्थाओं और बाजारों की असफलता के राजकोषीय प्रभाव का है। देश के केंद्रीय बैंक के रूप में वित्तीय स्थिरता सुनिश्चित करना रिज़र्व बैंक का भी दायित्व है। व्यापक तौर पर, कोई कह सकता है कि जब किसी देश की राजकोषीय स्थिति सुदृढ़ होती है तब वित्तीय संस्थाओं की असफलता से उत्पन्न जोखिम का सामना करने की क्षमता अधिक होती है। दूसरी ओर, एक दुर्बल राजकोषीय स्थिति में वित्तीय या बैंकिंग संकटों का सामना करने की क्षमता बहुत कम होती है। अधिक महत्वपूर्ण यह है कि जब भी वित्तीय क्षेत्र में समस्या की संभावना बढ़ती है तब वित्तीय संस्थाओं को सहायता देने के लिए राजकोषीय स्थिति में उपलब्ध गुंजाइश का आकलन होना चाहिए। इस संदर्भ में, सुदृढ़ता और साथ ही दुर्बलता का एक महत्वपूर्ण स्रोत सार्वजनिक स्वामित्व वाली वित्तीय संस्थाएं होती हैं जिनका राजकोषीय प्रभाव हो सकता है। वे कर-राजस्व के स्रोत के रूप में भारी योगदान करती हैं। लिंकेज का एक और स्रोत क्रॉस सब्सिडी है और हमें सरकारी क्षेत्र की संस्थाओं में अधिकतम क्रॉस सब्सिडी के क्षेत्रों की पहचान करनी होगी। वित्तीय मध्यस्थ संस्थाओं के माध्यम से और उनके द्वारा परोक्ष सब्सिडी के स्रोत भी महत्वपूर्ण हैं। वित्त मंत्रियों के हाल के वर्षों के अनेक बजट भाषणों को पढ़ने से भी उस सीमा का पता लगेगा जहां तक सरकारी क्षेत्र की वित्तीय मध्यस्थ संस्थाओं की गतिविधियां राजकोषीय नीति के साधन के रूप में चलती हैं, यद्यपि बाजार में ये संस्थाएं निजी क्षेत्र के साथ सभी क्षेत्रों में प्रतिस्पर्धा कर रही हैं। राजकोष के अनुसरण में सरकारी उद्यमों के ये

सार्वजनिक नीति उन्मुख कार्य वित्तीय बाजारों के विभिन्न घटकों में गहनता और सक्रियता तथा मूल्य-खोज को गंभीर रूप से सीमित कर देते हैं। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि राजकोषीय और सरकारी क्षेत्र के बीच लिंक का विश्लेषण करते समय शायद किसी को भी मात्र सरकारी क्षेत्र की उधार-अपेक्षा तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए।

पांचवां, वित्तीय बाजारों में और सुधारों के संदर्भ में यह एकदम साफ है कि विशेष रूप से सरकारी ऋण बाजार और कंपनी ऋण बाजार के लिए बीमा और पेंशन क्षेत्र का विकास समान रूप से बहुत महत्वपूर्ण है। किंतु, इस संबंध में कुछ चुनौतियां हैं। भारत में ऋण और इक्विटी में निवेश पर कर-व्यवहार एक जैसा नहीं है जिसमें इक्विटी में निवेश की ओर अनुकूल झुकाव नजर आता है। संविदागत बचतों को प्रोत्साहन देने के उपाय सीमित हैं। अतः, जैसे हम आगे बढ़ते हैं वैसे जिन क्षेत्रों पर ध्यान देना आवश्यक है वे वित्तीय बाजारों के विकास को जरूरी बतलाने वाले मांग पक्ष से ही संबंधित नहीं हैं, बल्कि आपूर्ति पक्षीय नीतियां भी हैं जो संविदागत बचतों को, विशेष रूप से पेंशन और जीवन बीमा निधियों के माध्यम से प्रोत्साहित करती हैं।

अब मैं राजकोष और बाह्य क्षेत्र पर कुछ कहना चाहता हूँ।

राजकोष और बाह्य क्षेत्र

बाह्य क्षेत्र के संदर्भ में, राजकोषीय नीति की दृष्टि से कुछ ऐसे मुद्दे हैं जो संदर्भ के दृष्टिकोण से संबंधित हैं।

पहला मामला सरकारी ऋण बाजार को विदेशी मुद्रा सरकारी ऋण के माध्यम से अनिवासियों के लिए खोलने से संबंधित है। वस्तुत; लगभग एक दशक पूर्व, विदेशी मुद्रा सरकारी ऋण जारी करने के पक्ष में अनेक तर्क दिए जा रहे थे जब माननीय वित्त मंत्री में अंतरराष्ट्रीय बाजारों में सरकारी उधार का सहारा लेने की सरकार की मंशा औपचारिक रूप से घोषित कर दी थी। अनेक शिक्षाविदों ने इस प्रस्ताव के पक्ष में तर्क दिए थे क्योंकि उन्हें महसूस हुआ था कि सरकार के लिए विदेश में निधि जुटाना अधिक किफायती होगा। किंतु, ऐसे उधार से विदेशी मुद्रा एक्सपोजर और फिर विदेशी मुद्रा जोखिम होगी जोकि लाभों के विश्लेषण में शामिल नहीं थी। विदेशी मुद्रा सरकारी ऋण के पक्ष में दिए गए तर्कों की दूसरी लाइन के अनुसार सरकार के विदेशी उधार से निजी क्षेत्र के विदेशी मुद्रा ऋण के लिए एक बेंचमार्क के विकास में सहायता मिलेगी। किंतु, अब सरकारी जोखिम को हिसाब में लेने के बाद सरकारी बेंचमार्क के बिना भी निजी क्षेत्र के ऋण को सरकारी जोखिम का भारांक है। इतना ही नहीं, मामला यह है कि जब ऋण बाजार की भावना अनुकूल हो तो शायद यह भावना प्रतिकूल होने पर बनने वाली संभाव्य स्थिति को ध्यान में रखे बिना विदेशी मुद्रा सरकारी ऋण जुटाने के लिए राजनीतिक और आर्थिक इच्छा हमेशा होती है, जैसा कि अनेक देशों में पहले भी हुआ है।

यह मामला सामने आने पर रिज़र्व बैंक ने सरकार के साथ मिलकर कार्य किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि उस समय विदेश मुद्रा सरकारी बांड जारी करना वांछनीय नहीं था। सरकारी बांडों के लिए अंतरराष्ट्रीय बाजारों में जाने के विरुद्ध दिए जाने वाले तर्कों में से एक सरकार के भारी राजस्व घाटे का था। इस प्रकार, उपर्युक्त संदर्भ में, विचारणीय बिंदु यह है कि, जीडीपी के प्रतिशत के रूप में सरकारी ऋण की मात्रा और राजकोषीय घाटे की मात्रा को ध्यान में रखते हुए, यदि

ऋण विदेशी मुद्रा में हो और अनिवासियों द्वारा धारित हो तो क्या स्थिरता बनाए रखने के लिए सरकारी नीति में वही युक्ति होगी।

उक्त पृष्ठभूमि में, राजकोषीय स्थिति वित्तीय संस्थाओं की स्थिति और वित्तीय बाजारों के विकास के चरण को ध्यान में रखते हुए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सरकारी प्रतिभूति बाजार, विशेष रूप से विदेशी मुद्रा मूल्यवर्गित बांडों में अनिवासी सहभागिता की गुंजाइश क्रमिक रूप से ही बढ़ाई जा सकती है। किंतु, अनिवासियों के लिए विदेशी मुद्रा सरकारी ऋण खोलने की गति राजकोषीय, संस्थागत और बाजार संबंधी प्रगति की गति पर निर्भर होगी।

दूसरा, मुख्यतः पेशेवर के दृष्टिकोण से दूसरा महत्वपूर्ण मुद्दा बाजार स्थिरीकरण योजना की राजकोषीय लागत का है। यह एक शैक्षिक मंच है, अतः इसकी पृष्ठभूमि और कहानी बतलाना शायद ठीक रहेगा। लगभग 2003 के अंत में, जब मैंने गवर्नर के रूप में कार्यग्रहण किया था, तब हमने समष्टि आर्थिक मानदंडों की जांच की थी और भारी पूंजी अंतर्वाह का अनुमान लगाया था। 2003 के अंतिम समय से जनवरी 2004 की शुरुआत के समय के दौरान, रिज़र्व बैंक में दो दलों का गठन किया गया था जिनमें से पहला निष्प्रभावीकरण पर और दूसरा चलनिधि समायोजन सुविधा (एलएएफ) की समीक्षा पर था जो कि मौद्रिक नीति परिचालन ढांचे के एक भाग के रूप में 2001 से परिचालन में थी। इन दो तकनीकी दलों की ड्राफ्ट रिपोर्टें और उनके विचार विमर्श रिज़र्व बैंक वेबसाइट पर पब्लिक डोमेन में रखे गए थे जिन पर गहन चर्चा हुई थी। भविष्य में पूंजी अंतर्वाहों में वृद्धि और चलनिधि में संभाव्य घट-बढ़ का अनुमान लगते हुए निष्प्रभावीकरण के नए साधन के रूप में एमएसएस शुरू करने के साथ ही रिज़र्व बैंक ने एलएएफ का केंद्र बदलकर दैनिक चलनिधि घट-बढ़ कर दिया।

इसमें उभरकर सामने आए मुद्दे यह थे कि यदि बाजार हस्तक्षेप के कारण विदेशी मुद्रा संचय होता है तो निष्प्रभावीकरण किया जाए या नहीं, और यदि अंततः हम निष्प्रभावीकरण का निर्णय लेते हैं तो निष्प्रभावीकरण कितना होना चाहिए और निष्प्रभावीकरण का व्यय कौन उठाएगा। एक नजरिया यह था कि अन्य देशों की प्रथाओं के अनुरूप ही केंद्रीय बैंक को न सिर्फ हस्तक्षेप पर बल्कि निष्प्रभावीकरण पर भी निर्णय लेना चाहिए और अपने स्वयं के बांड जारी करने चाहिए। एक विवेकसम्मत अपेक्षा के रूप में रिज़र्व बैंक ऐसे बांड जारी नहीं कर सकता। परिणामस्वरूप, एमएसएस शुरू किया गया जिससे निष्प्रभावीकरण सरकारी प्रतिभूति के माध्यम से होता है।

इसी के साथ-साथ, भारतीय संदर्भ में विनिमय दर के सरकारी नीति पर व्यापक प्रभाव को देखते हुए यह विचार किया गया कि निष्प्रभावीकरण की सीमा पर अकेले केंद्रीय बैंक द्वारा दृष्टि रखना ठीक होगा या नहीं। सरकार और रिज़र्व बैंक के बीच और उनके भीतर इस पर पर्याप्त विचार होने के बाद मार्च 2004 में इस बात पर सहमति बनी कि रिज़र्व बैंक से आए प्रस्तावों को देखकर सरकार समय-समय पर एमएसएस की सीमा निर्धारित करेगी। इसका अर्थ यह है कि एमएसएस के सीमा निर्धारण से सरकार उस राजकोषीय लागत को पहचान रही थी जिसे वह बाह्य क्षेत्र के प्रबंधन के संदर्भ में वहन के लिए तैयार थी।

तीसरा, संबंधित मामला यह था कि निष्प्रभावीकरण की राजकोषीय लागत का भार केंद्रीय बैंक को या सरकार को उठाना चाहिए। इसे सरकार के बजट के रूप में दर्शाने में हम अन्य देशों से एकदम अलग थे। यह उल्लेख करना उपयुक्त होगा कि अर्ध राजकोषीय लागत को केंद्रीय बैंक के तुलनपत्र पर लेने की प्रथा से अनेक केंद्रीय बैंकों के पूंजी आधार में ह्रास हुआ। ये केंद्रीय बैंक स्वायत्त रूप से कार्यरत होने के बावजूद, परिणामस्वरूप पूंजी ह्रास हुआ जिससे पूंजी के अंतर्वेश के लिए सरकार की सहायता आवश्यक हो गई। इस प्रकार, भारतीय संदर्भ में, बाह्य क्षेत्र के प्रबंधन के संबंध में निष्प्रभावीकरण संबंधी मुख्य राजकोषीय लागत एमएसएस के माध्यम से सरकारी बजट में स्पष्टतः दर्शाई जाती है जिससे राजकोषीय पारदर्शिता बढ़ती है। प्रसंगवश, एमएसएस की वांछनीयता पर जून 2004 के बाद सरकार के साथ नए सिरे से चर्चा की गई जब नए कैबिनेट ने शपथ ली थी और उन्होंने एमएसएस व्यवस्था की वांछनीय व्यवस्था के रूप में पुन:पुष्टि की।

चौथा, संदर्भानुकूल, आइएमएफ और आइसीआरआइईआर ने भारत में निष्प्रभावीकरण की अर्ध राजकोषीय लागत पर कुछ अध्ययन किया है। तकनीकी रूप से, कुल लेखांकन प्रतिफल देखना संभव है। किंतु, हो सकता है कि यह मानना कि केंद्रीय बैंक जब भी आरक्षित निधि का संचय करता है तो तुलनपत्र पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, वैश्विक तौर पर सही न हो। उदाहरण के लिए, पिछले वर्ष तक, चीन की देशी ब्याज दरें विदेशी मुद्रा आस्तियों पर प्राप्त प्रतिफल से कम थीं। इस मामले में, चीन के केंद्रीय बैंक के लिए आरक्षित निधि की वहन लागत ऋणात्मक थी जिसका परिणाम अर्ध राजकोषीय लाभ में होता था।

पांचवां, इस संबंध में एक मुद्दा रिज़र्व बैंक के तुलनपत्र पर बाजार दर पर विदेशी मुद्रा भंडार के आकलन का है। आरक्षित मुद्रा की मूल्यवृद्धि का परिणाम हानि होता है। किंतु अन्य दृष्टि से कोई व्यक्ति तर्क दे सकता है कि यह हानि आनुमानिक है। पुनः प्रत्येक केंद्रीय बैंक का लेखांकन का अलग तरीका होता है। अधिकांश केंद्रीय बैंक और निश्चित रूप से रिज़र्व बैंक भी परंपरागत लेखांकन प्रथा का पालन करता है ताकि अप्राप्त लाभ दर्शाए न जाएं। यहां मामला यह है कि कोई आरक्षित निधि अथवा 'अतिरिक्त' आरक्षित निधि रखने की लागत की गणना कैसे करता है। यह अनिवार्यतः अवसर लागत होने के कारण इसकी उचित गणना करने का एकमात्र मार्ग विदेशी मुद्रा आस्तियों की तुलना में स्थानीय मुद्रा आस्तियों पर ब्याज दरों के संदर्भ वाला है। किंतु दिलचस्प रूप से यहां उभरने वाला प्रश्न यह है कि समष्टि आर्थिक लाभों के लिए गणना कैसे की जाए। अनेक केंद्रीय बैंक, सरकार की सहमति से या उसके सिवाय आरक्षित निधि बढ़ा रहे हैं या आरक्षित निधि रख रहे हैं, भले ही उन्हें इसकी अर्ध राजकोषीय लागत आ रही हो। इससे स्पष्टतः पता चलता है कि इस प्रकार व्यापक रूप से अपनायी गई प्रथा के कुछ लाभ अवश्य होंगे; और यदि ऐसा है तो वे लाभ कौन से हैं? मेरा विचार है कि दुर्भाग्य से ये लाभ गणनायोग्य नहीं हैं। किंतु गणनायोग्य न होने मात्र से उन पर ध्यान न देना मैं ठीक नहीं मानता हूँ। इन लाभों की संक्षिप्त सूची निम्नवत् दर्शाई जा सकती है। एक, इससे अर्थव्यवस्था और विशेष रूप से उभरती बाजार

अर्थव्यवस्थाओं में विश्वास बढ़ता है जिससे सरकारी रेटिंग बेहतर हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप, वह स्प्रेड बेहतर होता है जिस पर सरकारी तथा निजी दोनों क्षेत्र धन जुटा सकते हैं। दो, इससे आघात सहने की क्षमता बढ़ती है। ये आघात दो प्रकार के हो सकते हैं: तेल के आघात, खाद्यान्न आघात या इन दोनों आघातों के संदर्भ में वास्तविक क्षेत्र के आघात और वित्तीय प्रवाहों के संदर्भ में वित्तीय आघात। वास्तविक और वित्तीय दोनों क्षेत्रों में घट-बढ़ को सुगम करने की गुंजाइश होती है जब आरक्षित निधि पर्याप्त हो। इनके अलावा, तार्किक रूप से मूल मुद्दा यह है कि वृद्धि और रोजगार पर अस्थिरताकारी प्रभाव से बचने के लिए क्या कुछ अधिक घट-बढ़ को कम किया जा सकता है। अतः, हमें न केवल इन लागतों को पहचानना है - आरक्षित निधि रखने की लागत ऋणात्मक या धनात्मक हो सकती है - जो गणनायोग्य है किंतु लाभ भी जो गणनायोग्य नहीं है। इनमें सरकारी नीति के प्रभाव हैं क्योंकि इनमें आरक्षित निधि की अर्ध राजकोषीय लागत नामक राजकोषीय नीति का तत्व शामिल है।

छठा, राजकोषीय नीति और आरक्षित निधि के बीच दूसरा संबंध भी है। यदि कोई रेटिंग एजेंसियों के आकलन पढ़े तो उन्हें पता चलेगा कि राजकोषीय स्थितियों के प्रति सुरक्षा प्रदान करने के लिए विदेशी मुद्रा आरक्षित निधि को किस प्रकार देखा जाता है। अतः एक दृष्टिकोण के अनुसार, यदि आरक्षित निधि रखने की राजकोषीय लागत है, तब भी उनसे राजकोष को लाभ तो मिलता ही है और इसे विश्लेषक स्वीकारते हैं। विदेशी मुद्रा बाजारों में उपयुक्त स्थिति बनाए रखने को किसी हिसाब से सार्वजनिक हित के रूप में देखा जा सकता है और यदि बाजार सहभागियों के प्रति ऐसे सार्वजनिक हित के प्रावधान से विदेशी मुद्रा भंडार में वृद्धि या कमी होती है तो आरक्षित निधि रखने की विद्यमान राजकोषीय लागत,यदि कोई हो, को उचित कहा जा सकता है।

अब मैं राजकोषीय नीति पर रिज़र्व बैंक के दृष्टिकोण के समापक भाग पर आता हूँ।

राजकोषीय नीति पर रिज़र्व बैंक का दृष्टिकोण

राजकोषीय सुधार के प्रति रिज़र्व बैंक का दृष्टिकोण यह है कि जब हम राजस्व घाटा समाप्ति की आवश्यकता पर सहमत होते हैं और राजकोषीय घाटे की सामान्य सीमा पर सहमत होते हैं तब अधिक महत्वपूर्ण राजकोषीय घाटे के वित्तपोषण का तरीका और इस प्रकार जुटाए गए संसाधनों के उपयोग का तरीका है। इसके अलावा, हम राजकोषीय अधिकार देने पर ध्यान केंद्रित करते हैं जो रिज़र्व बैंक के निदेशक मंडल की वार्षिक रिपोर्ट में 2000 के आसपास स्पष्ट रूप से दर्शाया गया था। राजकोषीय घाटे पर विशेष ध्यान केंद्रित करने से सरकार की भूमिका कम हो सकती है और इसके परिणामस्वरूप वह वृद्धि और विशेष रूप से समावेशक वृद्धि की प्रक्रिया की सहायता की स्थिति में नहीं होगी। व्यय की पुनर्प्राथमिकता का कार्य सब्सिडी समाप्त या कम करके और अधिक गरजमंद क्षेत्र को प्राप्त संसाधनों का विनियोजन करके पूरा किया जा सकता है। कर छूट कम करके संसाधन का उच्च स्तर भी उपलब्ध होगा।

अतः संपूर्ण विचार यह है कि हमारी जैसी अर्थव्यवस्था में, जिसमें ढांचागत रूपांतरण और सामाजिक तथा वित्तीय बुनियादी सुविधाओं में निवेश आवश्यक है, हमें राजकोषीय गतिविधियों के कम स्तर पर राजकोषीय और राजस्व घाटे में यांत्रिक गिरावट को लक्ष्य बनाने के बजाय राजकोषीय गतिविधियों के उचित स्तर के लिए प्रयास करने चाहिए, विशेष रूप से इसलिए

क्योंकि सार्वजनिक सुविधाएं उपलब्ध करायी जाती हैं और वह हमें राजकोषीय अनुशासन और समष्टि-स्थिरता बनाए रखने में समर्थ बनाएगा।

हाल की अवधि में विश्व भर में हुई वित्तीय उथलपुथल को देखते हुए समष्टि अर्थव्यवस्था के प्रबंधन में राजकोष का संबंध अब तो और भी महत्वपूर्ण हो गया है। जबकि हमने ऐसी वित्तीय उथलपुथल अपने देश में नहीं देखी है, यह स्मरण करना महत्वपूर्ण है कि जब सभी असफल हो जाते हैं तब यह राजकोष ही होता है जो सहायता के लिए आगे आता है।

मैं रेटिंग एजेंसी का एक वाक्य पढ़कर अपनी समापक टिप्पणी करूंगा। वह है "भारत का मौद्रिक प्रबंधन परंपरागत और विवेकी है जिसके साथ उसकी कम बाह्य ऋण स्थिति और स्थानीय मुद्रा निधीयन में सापेक्ष्य सुगमता से उसकी राजकोषीय दुर्बलता कम करने में सहायता मिलती है"। यहां महत्वपूर्ण मुद्दा यह है कि यदि रिज़र्व बैंक की नीति से राजकोषीय दुर्बलता कम करने में सहायता मिल रही है तो यह परंपरागत कैसे हो सकती है? इसका उल्लेख शायद 'उपयुक्त' के रूप में करने की आवश्यकता है।